यही एक राह...

हिन्दी ADDA

आशा पाण्डेय

यही एक राह...

चबूतरे पर गोबर रख कर वैदेही सीधी खड़ी हुई तो कमर की हड्डियों में तेज दर्द उठा। वैदेही ने अपने दोनों हाथ कमर पर रख कर गर्दन को ऊपर उठाया तथा कराहते हुए धीरे-धीरे कमर को पीछे की ओर मोड़ा। कमर की हड्डियों से 'कट्ट' की तेज आवाज उठी जिससे वैदेही को थोड़ी राहत महसूस हुई।

सबेरा होने में अभी पहर भर से अधिक समय बाकी है, पर वैदेही की दिनचर्या शुरू हो गई है। आज शुक्रवार है, सुबह से ही भीड़ लग जाएगी। चबूतरा जल्दी लीप लेना है। नहाकर कुछ फूल तोड़ लाने हैं। जिन्हें नीम की जड़ के पास चढ़ा देना है। चबूतरे के एक ओर लोहबान, अगरबत्ती भी सुलगा देनी है। नीम की जड़ के पास जहाँ फूल रखना है वहीं कहीं अगियार की व्यवस्था भी कर लेनी है तथा दीए में घी और बाती डालकर दीया लगा देना है।

शीतला मइया को नीम के साथ-साथ आम की पत्तियाँ भी प्रिय हैं इसलिए मूँज की एक रस्सी में आम की पत्तियों को गूँथ कर चबूतरे के चारों ओर से सजा देना है। इतना सब कर लेने के बाद ठीक छह बजे नीम के पेड़ पर बँधा घंटा बजा देना है। यह घंटा संकेत है थान पर आए लोगों के लिए, गाँव के लिए। घंटा बजते ही लोग समझ जाते हैं कि अब वैदेही शीतला मइया को अपने शरीर में बुलाने के लिए तैयार है। जिन लोगों को देवी मइया से कुछ विनती करनी रहती है वे कपूर, अगरबत्ती, लवाँग तथा फूल प्रसाद लेकर आ जाते हैं।

वैदेही बेमन से चबूतरे की ओर देखने लगी। खटिया भर का चबूतरा, इसको लीपना वैदेही के लिए कठिन नहीं है पर अब वह इस चबूतरे से बचना चाहती है। सारा खून सूख गया है उसका। अंदर से खोखलाकर दिया है इस चबूतरे ने उसे।

'देवी मइया का थान! यही तो कहते हैं लोग इस चबूतरे को। वैदेही ने ही कहलवाया है सबसे। हाँ, नीम के पेड़ के नीचे बने इस साधारण से चबूतरे को 'देवी मइया के थान' में वैदेही ने ही तब्दील किया है।

वैदेही हिसाब लगाती है। दस साल पहले, हाँ, दस साल पहले की ही तो बात है। अचानक एक दिन वह इसी चबूतरे पर बैठे-बैठे झूमने लगी थी। नीम के पेड़ में शीतला मइया का बास था, वही उतर आई थीं उसके शरीर में! देखते ही देखते पूरे गाँव के लोग वहाँ इकट्ठा हो गए थे। तमाशा देखने के लिए। शुरुआत में सबको यह वैदेही का तमाशा ही लगा था। आस्था का बीज तो धीरे-धीरे मन में उतरा था सबके। लेकिन, अब जड़ पकड़ चुका है। सुबह-शाम, दोनों जून, तीन-तीन, चार-चार घंटे के लिए चबूतरे के सामने लोगों का मजमा लगा रहता है। भरपूर चढ़ावा आता है। यूँ वैदेही का स्वाभिमान उन चढ़ावे में चढ़ी चीजों को लेने में आज भी आहत होता है। कितनी बार तो वह आशीर्वाद के रूप में उन चीजों को भक्तों पर ही लुटा देती है। प्रसाद के रूप में चढ़ी मिठाइयों पर जब उसके दोनों नाती ललक कर टूट पड़ते हैं तब उससे सहा नहीं जाता है। अथाह वेदना होती है दिल में। जिसे दबाने की कोशिश में वह दरक-दरक कर

टूटती है, टूट-टूट कर जुड़ती है। बहू समझती है वैदेही की पीड़ा पर वह करे ही क्या! समझ कर भी बेबस बनी रहती है। इस जरा-सी उम्र में उसने भी तो पहाड़ जैसे दुख देखे हैं।

ब्याह कर आई तो पाँच-छह महीने बाद ही सड़क दुर्घटना में उसका पति चल बसा। गाँव की महिलाएँ, यहाँ तक कि पुरुष भी बहू को ही दोष देने लगे - "न जाने कैसी गोड़ी थी कुलच्छिनी की, आते ही पति को खा गई।

वैदेही इन वाक्यों की तीक्ष्णता को समझती है। वेध कर रख देते हैं ये वाक्य। बस, छटपटाना ही अपने वश में रह जाता है। वैदेही अपनी बहू को छटपटाने नहीं देगी। तन कर खड़ी हो गई।

"क्या कह रहे हो तुम लोग? कुछ तो सोच कर बोलो। मैंने अपना बेटा खोया है तो इसने भी अपना पति खोया है। उजड़ गया है इसका जीवन। भला कोई अपने ही हाथों अपना जीवन उजाड़ना चाहेगा क्या? मेरा बेटा दुर्घटना में गया, इसमें इसका क्या दोष? तीन माह का बच्चा है इसके पेट में उसकी तो कुछ फिक्र करो।' फिर बहू के पास आकर उसने बहू से कहा, इन लोगों को पता ही नहीं है बेटा कि ये क्या बोल रहे हैं ...तुम चिंता मत करना मैं ऐसा कुछ नहीं सोचती हूँ...।

वैदेही बोले जा रही थी, बहू की आँखें बरसे जा रहीं थीं। दुख से नहीं, इतनी अच्छी, इतनी समझदार सास को पाकर। वह दिन था कि आज का दिन है वैदेही ही उसकी सब कुछ हो गई।

शुरू के दिनों में जब वह विधवा हुई थी तब उसके माँ-बाप ने बहुत चाहा था कि बच्चे से निजात पाकर वह दूसरी शादी कर ले, इस तरह भावनाओं में न बर्बाद करे अपना जीवन। पर वह अड़ी रही। वैदेही को छोड़कर कहीं जाने का ख्याल तक उसके मन में नहीं आया। जानती थी वह कि उसके यहाँ बने रहने से ही वैदेही इस पहाड़ जैसे दुख को झेल पाएगी।

पति का असमय वियोग वैदेही ने भी सहा था, जब उसके दोनों बेटे मात्र पंद्रह और बारह साल के थे, तब से। दोनों बच्चों को लेकर कुछ दिन के लिए वैदेही अपने भाई के घर चली गई थी। बड़ा घमंड था उसे अपने भाई पर। किसी तीज-त्योहार को सूना नहीं जाने देता था उसका भाई। इस विपत्ति में भी उसे अकेला नहीं छोड़ेगा। पर जल्दी ही घमंड चूर हो गया, भ्रम बिला गया। जान गई वैदेही कि सारे नाते-रिश्ते तब तक के

साथी हैं जब तक अपनी स्थिति अच्छी रहती है। दोनों बच्चों को लेकर लौट आई थी फिर से ससुराल।

तब से एक साहसी रूह बैठ गई है वैदेही के अंदर। बेटों के सामने कभी खुल कर रोई भी नहीं वह। जानती थी कि उसके आँसू बच्चों को और डरा देंगे। पति के यूँ असमय चले जाने से सिर्फ उसकी दुनिया ही नहीं वीरान हुई है, बेटों के ऊपर से भी बाप का साया उठ गया है। एक घना, आश्वस्त करता हुआ साया। बिखर गए हैं उनके भी सपने।

तब, जब वैदेही की भरी जवानी थी, उम्र ...यही कोई बत्तीस से पैंतीस साल, इकहरा बदन, गेंहूआ रंग, बड़ी-बड़ी आँखें। फूँक-फूँक कर कदम रखना पड़ता था उसे। गाँव, देहात में खेती का काम करवाना ऐसी अकेली औरतों के लिए खासा तकलीफदेह था, पर वैदेही ने किया सब, सिर्फ अपने साहस के बल पर। वैसे इस साहस को अपने भीतर बटोरने और उसे दिखाने में वह मन ही मन हर क्षण धराशायी हुई है।

पेट की भूख को मार-मार कर वैदेही ने अपने उभरे और गुलाबी गालों को गड्ढे में तब्दील कर दिया था तथा शीशा देखकर तसल्ली की साँस ली थी। अपना शरीर और जमीन दोनों बचाने में उसने कड़ी मशक्कत की थी। धीरे-धीरे बेटे बड़े होने लगे तो वैदेही को सहारा मिला।

बड़ी धूम-धाम से उसने अपने बड़े बेटे की शादी की। बहू के आते ही उसके घर में बहार-सी आ गई। पर भगवान को यह मंजूर नहीं था। शादी के छह महीने बाद ही बेटा सड़क दुर्घटना में चल बसा।

वज्र फाट पड़ा था घर पर। कुछ दिनों तक बिलखने के बाद वैदेही ने अपना साहस समेटा तथा एक बार फिर से अपने सीने पर पत्थर रख कर खड़ी हो गई। जो कुछ बचा है उसे सँभालने के लिए।

उसका छोटा बेटा बीस वर्ष का हो चुका है। उसी के सहारे सँभाल लेगी वह घर। कितना अहम होता है घर में पुरुष का होना। अब तक की जिंदगी में बात-बात पर महसूसा है वैदेही ने।

नहर में पानी आया था। उस दिन वैदेही के खेत में सिंचाई करने की बारी थी। जब वैदेही अपने खेत में पानी लगाने के लिए नहर पर पहुँची तो प्रधान के छोटे भाई के खेत में पानी लगाया जा चुका था। प्रधान का भाई था इसलिए दबंगई दिखा रहा था।

डरना तो वैदेही ने कब का छोड़ दिया था सो उफनती, हरहराती नदी की तरह भिड़ गई प्रधान के भाई से।

वह भी कहाँ पीछे हटने वाला था। वैदेही उसकी नाली बंद करके पानी को अपने खेत की ओर मोड़ती तो प्रधान का भाई फिर से नाली को काटकर पानी अपने खेत की ओर मोड़ ले जाता।

अंत में खीझ उठा था वह। फावड़े से ऐसा वार किया कि वैदेही के हाथ से खून की तेज धार निकल पड़ी। सुन कर दौड़ पड़ा था उसका बेटा। प्रधान के भाई से भी भिड़ गया और ऐसा भिड़ा कि अगर आस-पास के लोग न दौड़े होते तो वह गला दबा कर उसकी जान ही ले लेता।

पति की मृत्यु के बाद जब वैदेही के दोनों बेटे छोटे थे तब भी उसकी ओर से लड़ पड़ते थे लोगों से। वैदेही का सीना गर्व से फूल उठता था। पर इस घटना के बाद वैदेही काँप-काँप जा रही थी। कोस रही थी खुद को कि क्यों वह प्रधान के भाई से भिड़ गई थी। जवान बेटे का गरम खून, कहीं कुछ उल्टा-सीधा हो जाता तो! फँस जाता उसका बेटा फौजदारी के मुकदमें में या प्रधान के आदमी उस पर उलटवार ही कर देते तो! देख लेने की धमकी तो दे ही चुका है प्रधान का भाई! एक बेटा तो भगवान ने छीन ही लिया कहीं इसको भी कुछ...

मन ही मन वैदेही ने प्रतिज्ञा कि अब वह किसी से भिड़ेगी नहीं, चाहे खेत सींचा जाए या न सींचा जाए।

खेत खलिहान का काम करके जब वैदेही घर में पहुँचती है तो घर में पसरी मुर्दानगी, बहू का मुरझाया चेहरा उसे चैन नहीं लेने देता। ऊपर से घर की दीन-हीन अवस्था और दिन-दिन फूलता बहू का पेट।

लालच में पड़ गई थी वैदेही। बहू के निर्णय के विरोध में कुछ न बोल पाई थी। उसके बेटे की निशानी जो थी बहू के पेट में। कैसे कह देती कि बच्चा गिराकर मुक्त हो जाओ और अपने माँ-बाप की बात मानकर, कर लो दूसरा ब्याह।

पर अब कभी-कभी लगता है उसे कि उस समय वह कितनी स्वार्थी बन गई थी। पहाड़-सा जीवन, कैसे काटेगी बहू अकेले! वैदेही ग्लानि से भर जाती है, और इसी ग्लानि के चलते विचारों का एक नया अँकुर फूटा है वैदेही के दिमाग में - छोटे बेटे के साथ बहू का दूसरा ब्याह। अगर ऐसा हो जाए तो...

पर न तो वह बेटे से कह पा रही है और न ही बहू से। क्या सोचेंगे दोनों? उलट कर कुछ कह दिए तो शर्म से मर नहीं जाएगी वैदेही। कैसे कहेगी कि, तुम लोग नहीं समझ रहे हो, यह घर को बचाने का प्रयास है। बहुत कुछ करना पड़ता है घर के लिए ...यह जिंदगी है। भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता है जीवन में ...उसने तो यही जाना है, यही भोगा है, और देख भी यही रही है दुनिया में। इसलिए तुम दोनों भूल जाओ अपनी-अपनी इच्छाओं को और बैठ जाओ माडव (मंडप) में।

यह कोई नई या अनहोनी बात नहीं है। ऐसा होता है। उसके घर में भी हो जाए तो क्या फर्क पड़ेगा? पर लाख सोचे वैदेही किंतु उसका मुँह बच्चों से ऐसी बातें करने के लिए खुलता ही नहीं।

जब बहू को बेटा हुआ तो वैदेही छुप-छुप कर खूब रोई थी। समझ नहीं पा रही थी कि यह खुशी का अवसर है या दुख का। बच्चे के जन्म का समाचार सुन कर वैदेही की ननद भी आ गई थीं। एक दिन देवर-भाभी को हँसते बतियाते देख कर ननद ने वैदेही से कहा - "राधे की बहू, घर में इतनी सुंदर जोड़ी है, तुम्हें दिखती नहीं?"

"क्या कह रही हो दीदी? मैं कुछ समझी नहीं। अपने दिल की बात ननद के मुँह से निकलते देख, भीतर ही भीतर खुश हुई थी वैदेही।

"अब इतना भी अनजान मत बनो राधे की बहू ...सुधीर का ब्याह बहू के साथ क्यों नहीं कर देती हो? और साथ ही यह भी जोड़ गांइं कि, 'तुम तो खेती-बाड़ी में लगी रहती हो, दो जवान दिल, घर में एक साथ ...कुछ ऊँचा-नीचा हो जाएगा तो क्या करोगी?"

वैदेही को झटका लगा। ननद का यह दूसरा वाक्य नहीं पचा उसको। वह अपने बच्चों को जानती है, फिर भी चुप रह गई। क्या बोले? अनहोनी को होते देर भी तो नहीं लगती। वैसे उसकी ननद उसके मन की ही बात कह रही थीं। इसलिए वैदेही मुद्दे की बात पर आ गई।

"कैसे दीदी, ...कैसे कहूँ मैं उन दोनों से। ...यह क्या इतनी सीधी बात है जो कह सकूँ मैं।

"तुम्हारा मन है?"

"बुराई ही क्या है दीदी?"

"तो फिर ठीक है, मेरे ऊपर छोड़ दो। मैं करूँगी दोनों को समझाने का प्रयास।"

उस दिन से जुट गई थीं बड़ी ननद अपने प्रयास में। यह इतना आसान नहीं था। तीन वर्ष लग गए थे दोनों के दिलों को जोड़ने में। न जाने दोनों का दिल जुड़ा था या घर परिवार की भलाई सूझी थी, तीन वर्ष बाद दोनों ने हाँ कह दी।

गाँव भर में तरह-तरह की बातें फैली थी। कुछ लोगों ने सराहा तो कुछ लोगों ने थू-थू भी किया किंतु, वैदेही ने किसी की परवाह नहीं की। कर दिया दोनों का ब्याह।

जब बहू दुबारा पेट से हुई तो एक संगीत सा झरने लगा था वैदेही के मन से। पास-पड़ोस में, जहाँ अब तक वह कटखनी औरत के नाम से बदनाम थी, वहाँ उठना, बैठना, बोलना, बतियाना शुरू कर दिया था उसने।

बेटा नौकरी करने मुंबई चला गया था। हर महीने मनीऑर्डर भेजता था। खेत का अनाज और मनीआर्डर से पैसे दुनिया बदल गई थी वैदेही की।

फिर एक दिन मुंबई से चिट्ठी आई। बेटा सख्त बीमार है। कैंसर हो गया है उसे। पहली बार वैदेही ने तब सुना था इस बीमारी का नाम जब उसके अपने पिता चल बसे थे। डॉक्टर ने कुछ ऐसा ही नाम बताया था - कैंसर।

अब अपने बेटे की बीमारी का यह नाम सुनते ही काँप कर जड़ हो गई वैदेही। यह एक अप्रत्याशित समाचार था। उसे लगा मानों वह भी धीरे-धीरे मर रही है।

बेटे ने चिट्ठी में लिखा था कि वह मुंबई के टाटा मेमोरियल अस्पताल में भर्ती है। माँ को तथा बीवी बच्चों को देखना चाहता है। सबको मुंबई बुलाया है उसने।

खेती में हुए अनाज के अतिरिक्त पैसा बस बेटे के मनीऑर्डर से ही देखने को मिलता था। इधर पाँच-छ महीने से बेटे का मनीऑर्डर आना भी बंद हो गया था। हर महीने कुछ न कुछ बहाना लिख भेजता था वह। वैदेही कहाँ अनुमान लगा पाई थी कि मनीऑर्डर न आने का कारण बेटे की बीमारी हो सकती है। अब मुंबई जाने के लिए, बेटे की दवा के लिए, पैसा तो चाहिए। औने-पौने दाम में दो बीघा जमीन बेंच दिया था वैदेही ने।

बहू के भाई को साथ लेकर सब लोग मुंबई आ गए। पता चला कि बीमारी का अंतिम स्टेज है। पंद्रह दिन भी बेटे के साथ नहीं रह पाई। वह सबको छोड़कर दुनिया से चला गया।

बहू एक बार फिर विधवा हो गई। उसके आँसू रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे, पर वैदेही बेटे की लाश को एक टक देखते हुए खड़ी थी। रोये भी तो किसके सहारे।

अंतिम संस्कार के लिए लाश को बिजली से चलने वाले शव-दाह गृह में भेजा गया। वैदेही का बड़ा नाती, जिसकी उम्र छ साल से अधिक नहीं थी उसे भी, पिता को अग्नि देने के लिए ले जाया गया। मुखाग्नि तो उसको नहीं देनी पड़ी पर, बिजली की बटन तो उसी से दबवाई गई।

उछल कर किलकते हुए उसने पुट्ट से बटन दबाया था। उधर पिता राख में तब्दील हो रहा था, इधर वह नन्हा बच्चा बार-बार बटन दबाना चाह रहा था। कितना अद्भुत! छोटी-सी बटन! पुट्ट की अवाज! रोमांचकारी खेल!

बच्चे को देख-देखकर वैदेही का कलेजा फटा जा रहा था। जबरदस्ती उसने बच्चे को वहाँ से हटाया था।

अब वैदेही के कुनबे में दो छोटे बच्चे, जवान बहू और वैदेही का टूटता साहस भर बचा है। पंद्रह साल की थी तब इस घर में ब्याह कर आई थी। पैंतालिस की होते-होते पति तथा दो जवान बेटों को गवा चुकी।

वैदेही की समस्याओं का अंत यहीं नहीं होना था।

उस शाम वैदेही मजूर खोजने निकली थी। खेत में गेहूँ की फसल तैयार खड़ी थी। उसकी कटाई करवानी थी। शाम तक सारे मजूर खेत-खलिहान से निपट कर अपने-अपने घर आ जाते हैं, यही सोच कर वैदेही शाम को निकली थी।

एक घर से दूसरे घर का चक्कर लगाते हुए दो घंटे से ऊपर हो गए लेकिन एक भी मजूर न मिला। सब ने कहीं न कहीं काम पर लगे होने की बात कह दी। वैदेही को लगा कि सब उसे जान बूझ कर मना कर रहे हैं। अब वह निस्सहाय है न। बेटा था तब यही सारे मजूर बड़ी अदब से बात करते थे।

निराश वैदेही घर लौट आई। दरवाजा भीतर से बंद था। कुंडी खटकाने के कुछ देर बाद बहू ने डरते-डरते तब दरवाजा खोला जब उसे विश्वास हो गया कि बाहर उसकी सास ही खड़ी है।

उधर वैदेही की साँस अटकी जा रही थी - क्या हुआ होगा बहू को! क्यों नहीं खोल रही है दरवाजा! कहीं बहू भी... एक डर सा ठहर गया था वैदेही के दिल में। मौत का डर। हर

क्षण बस मौत ही दिखने लगी थी उसे। पता नहीं किसकी सुनाई पड़ जाए! उसके दोनों नाती की। उसके बहू की।

बहू ने दरवाजा खोलने में कुछ देर और लगा दिया होता तो शायद वैदेही की ही।

दरवाजा खुलने पर वैदेही को सामने देख कर बहू फफक-फफक कर रोने लगी थी। दोनों बच्चे बहू के आस-पास ही थे इसलिए वैदेही की धड़कन सँभल गई। बहू ने बताया कि अँधेरा घिरते ही वह दिशा मैदान के लिए खेत की ओर चली गई थी। उसके पीछे-पीछे दो आदमी चले आ रहे थे। उसने सोचा कि कहीं जा रहे होंगे। घूँघट की आड़ से उसने उन्हें देखा पर पहचान न पाई। मेड़ के एक ओर रुक गई वह, यह सोचकर कि ये लोग आगे बढ़ जाएँ तब वह चले। पर जैसे ही वे लोग उसके करीब आए तो उनमें से एक ने उसे अपने हाथ के घेरे में भर लिया। वह छटपटाई, चिल्लाई।

उसी समय उधर से मदन काका निकले। मदन काका को देखते ही दोनों उसे छोड़कर भाग गए।

सुन कर स्तब्ध रह गई वैदेही। उस दिन से वह दिशा मैदान के लिए बहू तथा दोनों बच्चों को भी अपने साथ ही लेकर जाने लग गई थी।

दिन में भी वह इतनी चौकन्नी रहने लग गई थी कि हर घंटे डेढ़ घंटे के बाद खेत से घर भाग आती थी। अब उसे लगने लग गया था कि वह लड़ाई में कमजोर पड़ रही है। एक समस्या को पूरी ताकत से पीछे धकेलती तो दूसरी मुँह बाए सामने आ जाती।

बहू की तो सारी चेतना ही अपनी देह की रक्षा तक सीमित हो गई थी।

गर्मी के बाद जब पानी बरसा तब गाँव भर के खेतों में ट्रैक्टर दौड़ने लगे। इधर-उधर से पैसे की व्यवस्था करके वैदेही ने भी अपने खेतों में हल चलवा दिया था, किंतु हल चलने के दो दिन बाद की एक घटना ने उसकी कमर और झुका दी। चौंक पड़ी थी वैदेही जब उसे पता चला कि प्रधान का भाई दो चार लठैतों के साथ उसके खेत में बुआई करवा रहा है। भागी वह खेत की ओर।

"रामबरन रोक दो मजूरों को, यह मेरा खेत है। तुम कैसे इसे बो सकते हो?"

"रहा होगा तुम्हारा खेत ...अब यह मेरा खेत है। ...मेरे खेत से लगकर है। चकबंदी के समय गलती से तुम्हारे नाम चढ़ गया था... अब इसे मैंने अपने नाम करा लिया है, चाहो तो कचहरी से नकल निकलवा लो या फिर पता कर लो पटवारी से।"

"यह तो सीधे-सीधे डाका है रामबरन, अब क्या इसी तरह अन्याय होगा इस गाँव में?" चाहकर भी वैदेही की आवाज बहुत तीखी नहीं हो पा रही थी।

'कैसा डाका?" खेत पर अपनी दृष्टि गड़ाए हुए रामबरन ने एक हथेली पर सुर्ती मल कर दूसरी हथेली से इतनी जोर की ठोक लगाया कि सुर्ती की धूल वैदेही के नथुनों में समा गई। फिर उसने चुटकी में सुर्ती भर कर होंठ के नीचे दबाया और वैदेही के अस्तित्व को पूरी तरह नकारते हुए बेपरवाह आवाज में बोला - "कह तो दिया न कि यह मेरी ही जमीन थी ...वह तो अब तक तुम्हारे ऊपर दया करते हुए सब्र खाए बैठा रहा मैं... मर तो गए सब तुम्हारे घर में। अब क्या करोगी दूसरों का खेत हड़प कर।"

'हड़प कर? कैसी बात करते हो रामबरन। पुरखों के जमाने से इस जमीन पर मेरे ही घर का हल चला है। और सुनो, किसके मरने की बात कर रहे हो तुम? मेरे दो नाती हैं। बहू है।"

"नाती...?" रामबरन हँसता है ...अरे वे दोनों पिल्ले भी मरेंगे। नहीं मरेंगे तो मार दिए जाएँगे। समझी। फनफनाना छोड़ो अब और घर जाकर बैठो।

"मार कैसे दिए जाएगे? कौन पैदा हुआ है मेरे बच्चों को मारने वाला? अभी मैं जिंदा हूँ रामबरन। नंगई पर उतर कर बुआई तुम भले ही कर लो पर काटूँगी मैं ही। खेत मेरा है।" वैदेही समझ नहीं पा रही थी कि वह रामबरन को धमकी दे रही है या खुद को आश्वस्त कर रही है। वैसे अब वह खेत पर रुकना नहीं चाहती है। अभी-अभी रामबरन ने बच्चों को मारने की जो बात की है उससे डर गई है वैदेही। बोये रामबरन खेत, उसे बच्चों को बचाना है। वह घर की ओर भागी।

वैदेही ने कह तो दिया कि फलस की कटाई वही करेगी पर जानती है कि वह नहीं कर पाएगी। ऐसे ही दस लठैत फिर लाएगा रामबरन। लठैतों की भी क्या जरूरत। अकेला रामबरन ही उस पर भारी है। पुलिस थाना, कोर्ट-कचहरी जाने के लिए कौन है उसके पास। न आदमी का सहारा है न पैसे का।

ऐसे ही एक-एक खेत सरकता गया हाथ से तो भूख से ही मर जाएँगे सब।

जिस दिन रामबरन ने वैदेही का खेत हड़प कर उसमें बुआई कराई थी उसी रात वैदेही के घर के पिछवाड़े से ठक-ठक की धीमी आवाज उठी। चिंता के मारे वैदेही को नींद तो आई नहीं थी। इस आवाज ने उसे और चौकन्ना कर दिया। वह उठी, लालटेन की बत्ती ऊपर सरका कर हाथ में लालटेन लिया और बाहर निकली।

दरवाजा खुलने की आवाज से बहू भी जाग गई थी किंतु वैदेही ने उसे दरवाजा बंद करके घर के अंदर ही रहने का निर्देश दिया और खुद बाहर निकल आई।

घर के पिछवाड़े आकर उसने देखा तो चकित रह गई। मुँह में गमछा लपेटे दो व्यक्ति उसके घर में सेंध लगा रहे थे। वैदेही को वहाँ देखते ही एक ने गहदाला फेंक कर उस पर वार कर दिया और वहाँ से दोनों भाग लिए। गहदाला वैदेही के बाँए कंधे पर लगा था। खून से भीग गई थी वह। शोर मचा कर किसी को बुलाने का भी साहस नहीं था उसमें।

महीनों लग गए थे घाव भरने में। अब वैदेही को विश्वास हो गया कि उसकी नाव बीच मँझधार में ही डूब जाएगी। हवा का रुख विपरीत है तथा सहारा देकर किनारे पहुँचाने वाला भी कोई नहीं है। छोटे बेटे की मृत्यु के बाद से ही वैदेही का साहस चुकने लगा था। अब उसका हर क्षण चिंता में ही बीतता था।

ऐसे ही चिंता की स्थिति में वह उस दिन चबूतरे पर बैठी थी। सोचती, बिसूरती। अचानक उसके दिमाग में ज्योति जली थी। ज्ञान प्राप्त हुआ था चबूतरे पर! यहीं, इसी चबूतरे पर सूझा था वैदेही को अपने बाल-बच्चों को, घर-बार को, खेत-खलिहान को बचा लेने का यह नायाब तरीका।

अचानक, चबूतरे पर बैठे-बैठे ही वैदेही अभुआने लग गई थी। सुनते ही गाँव की महिलाएँ अपना काम-धाम छोड़कर वैदेही को देखने दौड़ी आई। गाँव के लोगों के लिए यह कोई अनहोनी नहीं थी। लगभग हर गाँव में देवी के ऐसे थान होते हैं जहाँ देवी मइया अपने भक्त के ऊपर प्रसन्न होकर उसके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। पर वैदेही के शरीर में देवी का प्रवेश! यह बात गाँव वालों को अचरज में डाले थी।

वैदेही कभी भी पूजा-पाठ या व्रत उपवास नहीं करती थी। जब से विधवा हुई थी तब से तो उसे कोई शिव की पिंडी पर जल चढ़ाते हुए भी नहीं देखा था।

गाँव से कुछ दूर पर एक देवी स्थल था जहाँ सोमवार और शुक्रवार को मेला लगता था। गाँव की महिलाएँ झुंड बना कर वहाँ हलुआ-पूड़ी का रोट चढ़ाने जाती थीं। पर वैदेही कभी भी उस झुंड में शामिल नहीं हुई।

ऐसी वैदेही जब अपने हाथों को पटक-पटक कर, सिर को घुमा-घुमा कर अभुआने लगी तो सभी को आश्चर्य होना स्वाभाविक था।

वैदेही के शरीर में समाई देवी झूम-झूम कर प्रधान के भाई को चेतावनी दे रही थी - "रमबरना की इतनी हिम्मत, मेरी सवारी को परेशान करता है ...अब मैं चुप नहीं

बैठूँगी। सत्यानाश होगा रामबरना का ...देख लेना सब लोग, यहीं आकर नाक रगड़ेगा रमबरना... कुछ देर तक वैदेही का झूमना चलता रहा फिर धीरे-धीरे वह शांत हुई।

दोपहर बीतते-बीतते एकदम अप्रत्याशित खबर वैदेही के पास पहुँची कि रामबरन सुबह स्कूटर से शहर गया था दोपहर को जब वह घर के लिए लौट रहा था तब एक जीप वाले ने उसकी स्कूटर को पीछे से टक्कर मार दी। रामबरन दूर फेंका गया। अब अस्पताल में है।

पूरा गाँव सकते में है। देवी मइया ने जो कहा था, वह हो गया। रामबरन की पत्नी भागती हुई आई और वैदेही के पैरों पर गिर पड़ी।

पल भर के लिए वैदेही को भी यही लगने लगा कि सच में देवी मइया उसके शरीर में प्रवेश कर गई थी क्या! फिन मन ही मन मुस्कुराते हुए अपनी बहू को गले से लगा ली। कुछ देर तक दोनों धार-धार रोई। अरसे बाद दोनों ने हिम्मत महसूसी थी।

बस, उस दिन से यह सिलसिला चल निकला। चबूतरे पर बैठ कर वैदेही अभुआती। गाँव, जवार के लोग उससे अपने दुख की फरियाद करते। वैदेही उपाय बताती। संयोगवश कुछ बातें सही हो जाती।

अब वैदेही की स्तुति गान में प्रधान के भाई का परिवार सबसे आगे रहता। न तो अब कोई वैदेही का खेत जोत रहा था, न ही उसके घर सेंध लगाने की किसी में हिम्मत थी। अब उसका परिवार सुरक्षित था।

हाँ, इस सुरक्षा की कीमत वैदेही दर्द से कराह-कराह कर चुका रही है। वह भी अकेले में, भीतर ही भीतर। उसे ये राह कभी नहीं भाई। कितनी बार तो चाहा उसने, छोड़ दे इस अभिनय को। ये अभिनय सिर्फ शरीर को ही पीड़ा नहीं देता बल्कि दिल को भी दबोचे रहता है। धिक्कारता है उसे कि, आखिर ये क्या कर रही है वह। अपराधबोध गहराता जा रहा है दिल में। रात को जब बिस्तर पर पड़ती है तो शरीर के साथ ही दिल में भी बड़ा दर्द होता है। मन तड़पता है, सिर भन्नाता है।

अगले महीने में चैत का नवरात्र भी शुरू होने वाला है। फिर वही अभिनय! दिन भर सिर पटकना पड़ेगा चबूतरे पर। काँप जाती है वैदेही। पर, बच्चों के बड़े होने तक उसे अभुआना ही पड़ेगा। पुरखों की चौखट पर दिया जलता रहे उसके लिए वैदेही के पास यही एक रास्ता है।

...वैदेही गोबर घोलकर चबूतरे पर फैलाने लगी। उफ! फिर से चिलक गई उसकी कमर।